
प्रवचन नं. २४६, गाथा १६६-१६७ दिनाङ्क ०६-०६-१९७९,
बुधवार, ज्येष्ठ शुक्ल ११

यह समयसार चलता है, १६६ गाथा का भावार्थ, आस्रव अधिकार। वास्तव में जो मिथ्यात्व है, वही आस्रव है। मिथ्यात्व वही संसार है। फिर पीछे थोड़ा दोष रहता है, वह अल्प संसार है। मिथ्यात्व किसे कहते हैं? कि जो आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसमें तो शुभ-अशुभभाव होते हैं, वे मेरे हैं और उनसे मुझे लाभ होगा। दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव आता है, वे सब शुभभाव हैं, पुण्य है। उससे मुझे लाभ होगा, यह मिथ्यात्वभाव है। यह मिथ्यात्वभाव संसार और आस्रव है।

भावार्थ : ज्ञानी के अज्ञानमय भाव नहीं होते... आहाहा! जिसे आत्मज्ञान हुआ, जो अनन्त काल में कभी नहीं किया। ऐसे व्रत, तप, भक्ति और पूजा तो अनन्त बार किये, वह कोई नयी चीज़ नहीं है, वह तो पुण्य / आस्रवभाव है परन्तु उससे रहित तेरी

चीज है, शुभ-अशुभभाव से भिन्न पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो पूर्ण आत्मा देखा, ऐसा मैं हूँ—ऐसी अन्तर अनुभवदृष्टि होने का नाम सम्यग्दर्शन है। उसका नाम ज्ञानी है। उसे ज्ञानी कहा जाता है।

आत्मा शरीर की क्रिया से तो भिन्न है। वह तो जड़ है, वह पर की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। पर की क्रिया कर सकता हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह तो धर्मी नहीं परन्तु अन्दर में पुण्य और पापभाव होते हैं, उसमें भी जिसे प्रेम है, पुण्यभाव के प्रति प्रेम है और पुण्य से रहित मेरी चीज अन्दर भिन्न है, उसका जिसे प्रेम नहीं, वह मिथ्यादृष्टि जीव है, अज्ञानी है। आहाहा!

जिसे अन्तर में पुण्य-पाप के भाव का प्रेम और रुचि छूट गयी और ज्ञानस्वरूपी प्रभु भगवान आत्मा का अनुभव होकर दृष्टि हुई, उसे यहाँ ज्ञानी कहते हैं। धर्मी कहो या ज्ञानी कहो। परन्तु धर्मी यह। बाहर की कोई प्रवृत्ति—व्रत, नियम और तप करता है, इसलिए वह धर्मी है, ऐसा नहीं है। वह सब तो पुण्यक्रिया है।

ज्ञानी के अज्ञानमय भाव नहीं होते... ये पुण्य परिणाम मेरे—ऐसा अज्ञानमय भाव धर्मी को नहीं होता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। धर्मी को अज्ञानमय भाव नहीं होते और अज्ञानमय भाव न होने से... राग—दया, दान, व्रत, भक्ति का राग बन्ध का कारण है, मेरी चीज उससे भिन्न है। ऐसी जिसे धर्म की पहली सीढ़ी, पहला सोपान सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ है, उसे अज्ञानभाव नहीं होते। ये शुभ-अशुभभाव मेरे हैं, ऐसा भाव उसे नहीं होता। समझ में आया ?

(अज्ञानमय) राग-द्वेष-मोह अर्थात् आस्रव नहीं होते... इस कारण से ज्ञानी—धर्मी को मिथ्यात्व का नाश हुआ और सम्यग्दर्शन—स्वरूप की प्रतीति, अनुभव हुआ तो मिथ्यात्व सम्बन्धी राग-द्वेष-मोह उसे नहीं होते। आहाहा! अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव धर्मी को नहीं होते। आहाहा! पहली बात ही कठिन है।

आस्रव न होने से... धर्मी को अपने में शुद्ध श्रद्धा-सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान आत्मा में अनुभव से हुए, इस कारण उसे मिथ्यात्व सम्बन्धी आस्रव नहीं होता। आस्रव न होने से नवीन बन्ध नहीं होता। आहाहा! इस प्रकार ज्ञानी सदा ही अकर्ता होने से..

धर्मी उसे कहते हैं कि पर का कर्ता तो है नहीं परन्तु वह पुण्यपरिणाम का कर्ता भी नहीं। आहाहा! पाप का तो कर्ता नहीं, परन्तु पुण्यपरिणाम का कर्ता भी धर्मी (नहीं)। पहली श्रेणी का धर्मी अकर्ता होने से (अर्थात्) पर का कर्ता नहीं और राग का भी कर्ता नहीं; धर्मी तो अपने ज्ञानस्वरूप आनन्द का कर्ता है। आहाहा! ऐसी बात है।

इस प्रकार ज्ञानी सदा ही अकर्ता होने से... धर्मी तो पर से, परपदार्थ की कोई भी पर्याय होती है, उसका आत्मा कर्ता नहीं। यह शरीर चलता है, वाणी बोली जाती है, उस क्रिया का आत्मा कर्ता नहीं है। आहाहा! अज्ञानी पर का कर तो नहीं सकता परन्तु मानता है कि मैं पर का करूँ और कर सकता है यह कि पुण्य-पाप के भाव का अज्ञानी कर्ता होता है। ज्ञानी इन पुण्य-पाप का भी कर्ता नहीं होता, इनका जाननेवाला रहता है।

पूर्वबद्ध कर्म... नये कर्म बँधते नहीं, क्योंकि मिथ्यात्व सम्बन्धी राग-द्वेष नहीं तो उस सम्बन्धी का आस्रव नहीं तो नये कर्म बँधते नहीं और पुराने कर्म जो बँधे हुए पड़े थे, उनका मात्र ज्ञाता ही रहता है। पूर्व कर्म बँधे हुए पड़े हैं, उनका तो धर्मी जाननेवाला रहता है। वे कर्म मेरे हैं, और मुझमें बन्ध है, ऐसा धर्मी नहीं मानता, बहुत सूक्ष्म चीज़ है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की धर्म की शुरुआतवाली चीज़ कैसी है, यह बहुत कठिन है और सम्यग्दर्शन बिना तो ज्ञान और चारित्र तो होते ही नहीं। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा कि सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व और राग-द्वेष अनन्तानुबन्धी के नहीं होते तो उतना बन्ध भी नहीं होता और पूर्व बन्ध है, उसे जाननेवाला रहता है। पूर्व बन्ध जड़ है, वह मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! मुझमें है नहीं, वह तो जड़ में है। इस प्रकार धर्मी पुराने कर्म पड़े हैं, उनका जाननेवाला-देखनेवाला रहता है। नीचे। **अविरतसम्यग्दृष्टि के...** अभी गृहस्थाश्रम में हो, समकिति है। श्रेणिकराजा आदि अविरतसम्यग्दृष्टि हैं। अभी अन्तर में निवृत्ति नहीं है। पुण्य और पाप से निवृत्ति नहीं है, व्रत और प्रत्याख्यान आदि चारित्र भी नहीं है परन्तु अविरतसम्यग्दृष्टि, जिसे अव्रत है परन्तु है सम्यग्दृष्टि। चौथे गुणस्थान में है। चौथा गुणस्थान। (उसे भी) **अज्ञानमय राग-द्वेष-मोह नहीं होता।** चौथे गुणस्थान में, पाँचावें (गुणस्थान का) श्रावक होने से पहले। छठवाँ (गुणस्थान) गुणीपना वह तो कोई अलौकिक बातें हैं।

यहाँ तो चौथे गुणस्थान में पहला धर्म प्राप्त किया, अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव हुआ तो वह अविरत (सम्यग्दृष्टि है)। भले राग का त्याग नहीं, इन्द्रियों के विषय का भी त्याग नहीं, तथापि अविरतसम्यग्दृष्टि (को) दृष्टि सत्य प्रगट हुई है। आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप है, वह विकाररहित है और पूर्ण आनन्द है, ऐसे अनुभव में धर्मी जीव को शुरुआत में चौथे गुणस्थान में अविरतसम्यग्दृष्टि होता है। आहाहा! उसे भी अज्ञानमय राग-द्वेष नहीं होते। सम्यग्दृष्टि-धर्मी हुआ, उसे अज्ञानमय राग-द्वेष नहीं होते।

मिथ्यात्व सहित रागादि होता है... आहाहा! जिसकी श्रद्धा मिथ्यात्व है, वह पाप परिणाम में ठीक-सुख है और पुण्यपरिणाम में धर्म है, ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। वह जैन नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! मिथ्यात्व सहित रागादि होता है, वही अज्ञान के पक्ष में माना जाता है,... विपरीत मान्यता, राग-द्वेष मेरे हैं - ऐसी जो मान्यता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि का रागादिभाव अज्ञान के पक्ष में माना जाता है,.. वह अज्ञान है।

अपने स्वरूप का भान नहीं और राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम मेरा धर्म है और उससे मुझे धर्म होगा, ऐसी मिथ्यादृष्टि है, उसके अज्ञानमय भाव में (राग-द्वेष माने जाते हैं)। मिथ्यादृष्टि के अज्ञानमय पक्ष में राग-द्वेष होते हैं। मिथ्यात्व का नाश हुआ और सम्यग्दर्शन हुआ तो अज्ञान पक्ष में जो राग-द्वेष होते हैं, वे नहीं होते। ऐसी बात है।

सम्यक्त्वसहित रागादिक अज्ञान के पक्ष में नहीं है। जिसे अपना स्वभाव पुण्य और पाप के भाव से, शुभ-अशुभभाव से भिन्न है - ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई, वह समकितसहित रागादि अज्ञान के पक्ष में नहीं है। उस समकित को राग होता है, परन्तु अज्ञान के पक्ष में नहीं है। ज्ञानी तो राग का जाननेवाला रहता है। राग मेरा कर्तव्य है, ऐसा ज्ञानी को नहीं होता। आहाहा!

सम्यक्दृष्टि के सदा ज्ञानमय परिणाम ही होता है। आहाहा! पहले श्रेणी का धर्मी उसे कहा जाता है कि जिसे दया, दान, व्रत, परिणाम, राग से भिन्न ज्ञानधारा सदा चलती है। मैं तो सदा ज्ञातादृष्टा, आनन्द हूँ, ऐसी दृष्टि में राग से भिन्न भेदज्ञान की धारा चलती है। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को निवृत्ति नहीं (और) बाहर से धर्म मान ले।

आहाहा! यह यात्रा कर आये, (इसलिए) धर्म हो गया। सम्मेदशिखर की यात्रा, वह तो पुण्य है; धर्म नहीं। गिरनार की यात्रा, शत्रुंजय की यात्रा, वह तो राग है। राग से मुझे धर्म होगा, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उस मिथ्यादृष्टि के पक्ष में जो राग-द्वेष होते थे, वैसे सम्यग्दृष्टि को अज्ञान पक्ष के राग-द्वेष नहीं होते। आहाहा! राग-द्वेष आते हैं, परन्तु वे मेरे हैं और मुझे लाभदायक हैं, ऐसी समकिति जीव की दृष्टि नहीं होती। आहाहा!

सदा ज्ञानमय परिणमन ही होता है। 'ही' कहा है। मैं तो जाननेवाला-देखनेवाला ही हूँ। मैं तो ज्ञातादृष्टा हूँ। ये दया, दान, व्रत के परिणाम भी मेरा कर्तव्य नहीं। आहाहा! उसे यहाँ प्रथम श्रेणी का समकिति कहने में आता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि के सदा ज्ञानमय परिणमन ही होता है। उसको चारित्रमोह के उदय की बलवत्ता से... चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को अज्ञानमय राग-द्वेष नहीं होता। तब पूर्व के चारित्र के बल के दोष से, चारित्रमोह के कारण जो रागादि होता है, उसका स्वामित्व उसके नहीं है;.. समकिति भले गृहस्थाश्रम में हो और रागादि चारित्रमोह का उदय हो, परन्तु धर्मी उसका स्वामी नहीं होता। स्वामी तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसका मैं स्वामी हूँ। ऐसी बात है, भाई!

चारित्रमोह के उदय से धर्मी को भी राग-द्वेष, विषय-वासना आदि होते हैं परन्तु उसमें स्वामित्व नहीं है, उसमें सुखबुद्धि नहीं है, उसमें हितबुद्धि नहीं है। आहाहा! रागादि होता है, उसका स्वामित्व उसके नहीं है; वह रागादि को रोग समान जानकर प्रवर्तता है... आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे राग होता है, उसे रोग समान जानता है। यह तो रोग है, मेरी दशा नहीं। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ीवाला, उसे राग आता है परन्तु वह राग को रोग समान जानता है। आहाहा!

छह खण्ड का राज्य (होवे)। भरत चक्रवर्ती समकिति थे, परन्तु (उसके) स्वामी नहीं थे। राग का स्वामी तो नहीं, परन्तु पर का स्वामी तो है ही नहीं। राग में दिखने पर भी अपना शुद्ध स्वरूप राग से भिन्न है, उसका स्वामी होकर, राग आता है उसका स्वामी नहीं होता। आहाहा! यह तो जहाँ-तहाँ दया, दान, व्रत, यात्रा, भक्ति के परिणाम किये, वे मेरे हैं और मुझे लाभ होगा, (ऐसा मननेवाला) तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, उसे धर्म नहीं है। वह तो अज्ञानी है। आहाहा! कठिन बात है।

रागादि को रोग समान जानकर... जैसे रोग आता है, तो उसे भला जानता है ? इसी प्रकार धर्मी को राग आता है परन्तु रोग-समान जानता है। उसका स्वामी मैं नहीं; मेरी चीज़ तो उससे भिन्न है। ऐसा बोध और सम्यग्दर्शन हुआ, (वह) राग को रोग समान जानता है। अज्ञानी राग को अपना मानकर हितकर मानता है। आहाहा! यह आस्रव अधिकार है।

अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें काटता जाता है। आहाहा! धर्मी जीव, अपना शुद्ध चिदानन्द प्रभु, जिनस्वरूपी भगवान आत्मा का भान, सम्यग्दर्शन हुआ, उसे पूर्व के कारण से राग आता है परन्तु उस राग को काटता है, राग को रखता नहीं। आहाहा! राग आता है, उसकी रक्षा नहीं करता। आहाहा! राग को काटता जाता है। मैं तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ। धर्मी की पहली श्रेणी में, चौथे गुणस्थान में (ऐसी मान्यता होती है), पाँचवाँ गुणस्थान श्रावक, वह तो बापू! ऊँची चीज़ है। समकित के बिना श्रावक नहीं होता। समकित के बिना साधु भी नहीं होता। पहले समकित यह चीज़ है कि चाहे तो शुभ-अशुभभाव हो, वे मेरे नहीं हैं; मैं उनका नहीं हूँ। मैं उनका स्वामी नहीं और मैं मेरी शुद्ध चीज़ का स्वामी हूँ। ऐसा मार्ग है।

अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें काटता जाता है। अपना पुरुषार्थ स्वभाव-सन्मुख करके राग को काटता जाता है। राग अपना मानकर स्वामी होता है, वह ज्ञानी नहीं है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग है। अभी तो दुनिया ने बाहर से व्रत, तप, भक्ति, पूजा और यात्रा में धर्म मान लिया है, (जबकि वह सब) है राग। उसे धर्म मान लिया है, वह मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं है। उसे जैन की खबर नहीं है। आहाहा!

इसलिए ज्ञान के... आहाहा! जो रागादि होता है... रागादि, द्वेषादि, रति, अरति के परिणाम होते हैं। वह विद्यमान होने पर भी अविद्यमान जैसा ही है। है, तथापि नहीं, उसके स्वामी नहीं होते और अपने में नहीं, (ऐसा मानते हैं)। व्यवहाररत्नत्रय का, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह भी अपना नहीं है। राग पर है। आहाहा! ऐसा धर्मी! सूक्ष्म बात है, बापू! अनन्त काल में 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ' अनन्त बार मुनि हुआ, दिगम्बर सन्त (हुआ) परन्तु 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' सम्यक्त्व (प्रगट) नहीं किया तो सब निरर्थक है। व्रत के परिणाम पुण्य हुए, स्वर्गादि मिले (परन्तु)

जन्म-मरण का अन्त नहीं आया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' नौवें ग्रैवेयक में दिगम्बर साधु होकर अनन्त बार गया परन्तु आत्मज्ञान (के बिना)। पुण्य-पाप के विकल्प से मेरी चीज भिन्न है और पुण्य-पाप दोनों बन्ध के कारण हैं, मेरी चीज नहीं - ऐसा आत्मज्ञान नहीं किया। आत्मज्ञान के बिना लेश सुख प्राप्त नहीं हुआ। यह महाव्रत के और अट्टाईस मूलगुण के परिणाम तो दुःखरूप हैं, आस्रव हैं। आहाहा!

यह आस्रव अधिकार है न! धर्मी को जरा चारित्रदोष के कारण रागादि होते हैं, वे विद्यमान होने पर भी अविद्यमान जैसा ही है। मेरी चीज नहीं, मुझमें नहीं, उनमें मैं नहीं। आहाहा! (ऐसा) भेदज्ञान जिसे वर्तता है (कि) उस राग में मैं नहीं और मुझमें राग नहीं। है? वह विद्यमान होने पर भी अविद्यमान जैसा ही है। वह आगामी सामान्य संसार का बन्ध नहीं करता,... सामान्य संसार का अर्थ (यह है कि) अनन्त संसार का बन्धन हो, वह सामान्य संसार। समकित्ती को रागादि आते हैं, परन्तु सामान्य संसार नहीं, परन्तु अल्प राग है तो स्थिति और रस / अनुभाग भी थोड़ा पड़ता है, परन्तु अनन्त संसार का कारण नहीं है। आहाहा!

सामान्य संसार का बन्ध नहीं करता,... अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्व है, ऐसा संसार उसे नहीं है। मात्र अल्प स्थितिअनुभागवाला... थोड़ी स्थिति, कर्म की स्थिति, रस पड़ता है परन्तु उसके भी वे तो ज्ञातादृष्टा हैं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! धर्म—वीतराग मार्ग, परमेश्वर जिनेश्वर ने जो धर्म कहा, वह कोई अलौकिक बात है! अभी तो सब गड़बड़ चली है। बाहर की प्रवृत्ति और उसमें धर्म (मान बैठे हैं)। यह व्रत करो और अपवास करो और पूजा करो और भक्ति करो, यात्रा करो, वह धर्म। यह सब राग है और इसमें धर्म मानता है, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। मिथ्यात्व का संसार उसके पास है। मिथ्यात्व, वही संसार है। है इसमें? है, इसमें है। देखो, ६८ गाथा में है। १६८ (गाथा) है न!

संसार का मूलकारण मिथ्यात्व ही है। १६८ गाथा से पीछे अन्त में। अन्तिम पद १६९ (गाथा) के पहले १६८ के अन्त में। है? संसार का मूलकारण मिथ्यात्व ही है। अल्प रागादि होते हैं, वह संसार का, मूल संसार का कारण नहीं है। है इसमें? है या नहीं?

आहाहा! परन्तु मिथ्यात्व किसे कहना, यह खबर नहीं। यह मानो कि जैनधर्म में आ गये और यह व्रत करते हैं, तपस्या करते हैं, पूजा-भक्ति करेंगे तो धर्म होगा, (ऐसा मानता है)। धूल में भी धर्म नहीं है। ऐसा तो तूने अनन्त बार किया है। अभी की अपेक्षा नौवें ग्रैवेयक गया, तब तो अनन्त बार मुनिपना पालन किया है परन्तु वह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण तो राग और आस्रव है। उनसे भिन्न मेरी चीज़ आनन्द है, उसका सम्यग्ज्ञान बिना, यह सब मिथ्यात्व का आस्रव इसे संसार है। आहाहा!

ऐसे अल्प बन्ध को यहाँ नहीं गिना है। १६६ (गाथा) पूरी। इस प्रकार ज्ञानी के... धर्मी जीव को राग से भिन्न अपने स्वरूप का भान है। धर्मी उसे कहते हैं कि अपने स्वरूप में राग की भिन्नता है। राग में मैं नहीं और मुझमें राग नहीं। दया, दान, व्रत के परिणाम भी राग हैं, वे मुझमें नहीं और मैं उनमें नहीं। ऐसा भेदज्ञान सम्यग्दृष्टि को हुआ है। इस प्रकार ज्ञानी के आस्रव न होने से बन्ध नहीं होता। मिथ्यात्व सम्बन्धी आस्रव नहीं है तो उस सम्बन्धी अनन्त संसार का कारण ऐसा बन्ध नहीं है। आहाहा!

गाथा-१६७

अथ रागद्वेषमोहानामास्रवत्वं नियमयति-

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणितो ।

रागादि-विप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि ॥१६७॥

भावो रागादि-युतो जीवेन कृतस्तु बन्धको भणितः ।

रागादि-विप्रमुक्तोऽबन्धको ज्ञायकः केवलम् ॥१६७॥

इह खलु रागद्वेषमोहसम्पर्कजोऽज्ञानमय एव भावः, अयस्कान्तोपलसम्पर्कज इव कालाय-ससूचीं, कर्म कर्तुमात्मानं चोदयति ।

तद्विवेकजस्तु ज्ञानमयः, अयस्कान्तोपलविवेकज इव कालायससूचीं, अकर्मकरणोत्सुकमात्मानं स्वभावेनैव स्थापयति ।

ततो रागादिसंकीर्णोऽज्ञानमय एव कर्तृत्वे चोदकत्वाद्बन्धकः । तदसंकीर्णस्तु स्वभावोद्भा-सकत्वात्केवलं ज्ञायक एव, न मनागपि बन्धकः ॥१६७॥

अब, रागद्वेषमोह ही आस्रव है, ऐसा नियम करते हैं:-

रागादियुत जो भाव जीवकृत उसहि को बन्धक कहा।

रागादि से प्रविमुक्त ज्ञायक मात्र, बंधक नहिं रहा ॥१६७॥

गाथार्थ : [जीवेन कृतः] जीवकृत [रागादियुतः] रागादियुक्त [भावः तु] भाव [बंधकः भणितः] बन्धक (नवीन कर्मों का बन्ध करनेवाला) कहा गया है। [रागादिवि-प्रमुक्तः] रागादि से रहित भाव [अबंधकः] बंधक नहीं है, [केवलम् ज्ञायकः] वह मात्र ज्ञायक ही है।

टीका : जैसे लोहचुम्बक-पाषाण के साथ संसर्ग से (लोहे की सुई में) उत्पन्न हुआ भाव लोहे की सुई को (गति करने के लिये) प्रेरित करता है; उसी प्रकार राग-द्वेष-मोह के साथ मिश्रित होने से (आत्मा में) उत्पन्न हुआ अज्ञानमय भाव ही आत्मा को कर्म करने के लिये प्रेरित करता है, और जैसे लोहचुम्बकपाषाण के असंसर्ग से (सुई में) उत्पन्न हुआ भाव लोहे की सुई को (गति न करनेरूप) स्वभाव में ही स्थापित करता है; उसी प्रकार राग-द्वेष-मोह के साथ मिश्रित नहीं होने से (आत्मा में) उत्पन्न हुआ ज्ञानमय भाव जिसे कर्म करने की उत्सुकता नहीं है (अर्थात् कर्म करने का जिसका स्वभाव नहीं है), ऐसे आत्मा को स्वभाव में ही स्थापित करता है; इसलिए रागादि के साथ मिश्रित अज्ञानमय भाव ही कर्तृत्व में प्रेरित करता है, अतः वह बन्धक है और रागादि के साथ अमिश्रित भाव, स्वभाव का प्रकाशक होने से मात्र ज्ञायक ही है, किञ्चित्मात्र भी बन्धक नहीं है।

भावार्थ : रागादि के साथ मिश्रित अज्ञानमय भाव ही बन्ध का कर्ता है, और रागादि के साथ अमिश्रित ज्ञानमय भाव बन्ध का कर्ता नहीं है-यह नियम है।

गाथा - १६७ पर प्रवचन

अब, रागद्वेषमोह ही आस्रव है, ऐसा नियम करते हैं:- भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर सन्त संवत् ४९ में दो हजार वर्ष पहले भरतक्षेत्र में हुए। भगवान् के पास गये थे। सीमन्धर भगवान् अभी महाविदेह में विचरते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है। वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यह शास्त्र बनाया है। आहाहा! यह कहते हैं, अब, रागद्वेषमोह ही आस्रव है... यह मिथ्यात्व सम्बन्धी जो राग-द्वेष-मोह है, वही आस्रव है। आहाहा! १६७ (गाथा)।

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो ।

रागादि-विप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि।।१६७।।

रागादियुत जो भाव जीवकृत उसहि को बन्धक कहा।

रागादि से प्रविमुक्त ज्ञायक मात्र, बंधक नहीं रहा।।१६७।।

आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! यहाँ तो (अभी अज्ञानी) कहते हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय हो जाएगा, यह अज्ञानी की मान्यता है। राग करते-करते धर्म हो जाएगा। आहाहा! लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आ जाएगी। इसी प्रकार क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति करते-करते समकित होगा, यह सब मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह मिथ्यादृष्टि के रागद्वेषमोह ही आस्रव है...

टीका : जैसे लोहचुम्बक-पाषाण... है न? लोहचुम्बक पत्थर। सन्त-दिगम्बर मुनि अमृतचन्द्राचार्यदेव दृष्टान्त देते हैं। लोहचुम्बक पत्थर है, उसके साथ संसर्ग से... उसके संसर्ग में। (लोहे की सुई में) उत्पन्न हुआ भाव... उसके संसर्ग से, उससे नहीं। क्या कहा? लोहचुम्बक पत्थर है (और) सुई है। सुई ने (लोहचुम्बक का) संसर्ग किया तो खिंचने का भाव उत्पन्न हुआ। वह लोहचुम्बक से नहीं। सुई ने लोहचुम्बक का संसर्ग किया तो अपनी पर्याय में लोहचुम्बक की ओर खिंच जाए, ऐसी पर्याय उत्पन्न हुई। आहाहा! है?

(लोहे की सुई में) उत्पन्न हुआ भाव... संसर्ग से उत्पन्न हुआ भाव। भाव तो स्वयं में हुआ है। वह लोहचुम्बक तो निमित्त है। लोहचुम्बक तो परवस्तु है, सुई परवस्तु है। सुई में इस ओर खिंचने की जो पर्याय हुई, वह लोहचुम्बक के संसर्ग से हुई, परन्तु स्वयं से हुई है। आहाहा! लोहचुम्बक-पाषाण के साथ संसर्ग से (लोहे की सुई में) उत्पन्न हुआ भाव लोहे की सुई को (गति करने के लिये) प्रेरित करता है,... वह सुई लोहचुम्बक की ओर जाती है।

उसी प्रकार राग-द्वेष-मोह के साथ मिश्रित होने से... आहाहा! क्या कहते हैं? अज्ञानी, जैसे लोहचुम्बक के संसर्ग से सुई में गति करने की पर्याय हुई, उसी प्रकार अज्ञानी कर्म के उदय में राग-द्वेष और संसर्ग करता है, उसका परिचय करता है। आहाहा! राग मेरा, द्वेष मेरा। आहाहा!

मुमुक्षु : परपदार्थ से हुआ, ऐसा स्पष्ट कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई परपदार्थ ने किया, (ऐसा) कहा नहीं। स्वयं से हुआ है, ऐसा कहा है।

उसका—उस लोहचुम्बक का संसर्ग किया, इसलिए उत्पन्न हुआ। उसी प्रकार राग-द्वेष-मोह के साथ मिश्रित होने से... देखो! अज्ञानी अपना स्वभाव चैतन्य आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु को भूलकर, अज्ञानी उन पुण्य-पाप का राग और द्वेष का संसर्ग करता है, परिचय करता है.. आहाहा! उसके साथ जुड़ान करता है। मिश्रित होने से (आत्मा में) उत्पन्न हुआ अज्ञानमय भाव.. राग-द्वेष के परिणाम का परिचय करने से, वे मेरे हैं, (ऐसा) संसर्ग (करने से) आत्मा में अज्ञानमय भाव हुआ। जैसे सुई में लोहचुम्बक के पत्थर का संसर्ग करने से उसमें खिंचने की पर्याय स्वयं से स्वयं में हुई है। इसी प्रकार राग-द्वेष और मोह, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, परन्तु है राग, उनका परिचय किया - संसर्ग किया। आहाहा! है ?

राग-द्वेष-मोह के साथ मिश्रित होने से (आत्मा में) उत्पन्न हुआ अज्ञानमय भाव.. अपने में राग की एकताबुद्धि से, यह पुण्यपरिणाम मेरे हैं और मुझे लाभदायक हैं... आहाहा! ऐसे अज्ञानभाव से अज्ञानमय भाव ही आत्मा को कर्म करने के लिये प्रेरित करता है,.. आहाहा! वह अज्ञानमय भाव ही विकार करने के लिए प्रेरित करता है। विकार कर्म मेरा है, यह अज्ञानभाव प्रेरित करता है। अज्ञानभाव राग का कर्ता होता है। दया, दान परिणाम मेरा कर्म है और मैं कर्ता हूँ, यह अज्ञानमय भाव है। आहाहा! है या नहीं अन्दर? आहाहा!

आत्मा को कर्म करने के लिये.. कर्म अर्थात् विकार परिणाम करने में। विकार परिणाम के कर्ता होने में, विकार के परिणाम के साथ परिचय किया तो विकार कर्म मेरा है, ऐसे कर्ता होता है। कर्म करने के लिए प्रेरित होता है। राग मेरा है-ऐसे प्रेरित होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात।

लोहचुम्बक का संसर्ग करने से सुई में स्वयं में गति करने की शक्ति उत्पन्न हुई। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप को भूलकर पुण्य और पाप का राग है, उसका संसर्ग करने से, उसकी कर्ताबुद्धि होने से राग मेरा कार्य है, ऐसी प्रेरित बुद्धि होती है। आहाहा! ऐसा मार्ग। बनियों को व्यापार-धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। पूरे दिन धन्धा और पाप। उसमें ऐसा सत्य सुनने मिलता नहीं। बाहर का सुनने मिलता है - करो यात्रा, करो भक्ति, करो व्रत और करो उपवास, कल्याण हो जाएगा। इस प्रकार अज्ञानी को

राग की क्रिया के परिचय से अज्ञानभाव उत्पन्न हुआ, वह अज्ञानभाव राग का कर्ता होता है। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! अनन्त काल (गया)।

जिनेश्वरदेव का मार्ग दिगम्बर सन्त कहते हैं। नग्न मुनि! कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्यदेव जगत के लिए (प्रसिद्ध करते) हैं। प्रभु! तुझमें राग और पुण्य का कर्तापना क्यों हुआ? तू तो ज्ञाता है और राग-द्वेष परिणाम में कर्ताबुद्धि क्यों हुई? कि राग और द्वेष का परिचय करने से, संसर्ग करने से... आहाहा! राग की कर्ताबुद्धि तुझमें हुई। आहाहा! पहली बात समझना कठिन। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, बापू!

आत्मा को कर्म करने के लिये प्रेरित करता है,.. क्या कहा? लोहचुम्बक के संसर्ग से सुई में गति करने की शक्ति हुई; इसी प्रकार भगवान आत्मा तो ज्ञातादृष्टा है परन्तु राग और द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम के संसर्ग से, वे मेरे हैं—ऐसा परिचय करने से अज्ञानभाव से राग मेरा है, ऐसा प्रेरित करते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! क्या हो? 'अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान, सेव्या नहीं गुरु सन्त को।' सच्ची चीज़ क्या है? मिली तो आदर नहीं किया। (माना नहीं), वह तो एकान्त है, एकान्त है, ऐसा करके टाल दिया। आहाहा!

परमात्मा जिनेश्वरदेव ने जो कहा, वह सन्तों—दिगम्बर सन्त आढृतिया होकर जगत को माल बताते हैं। आढृतिया... आढृतिया! दिगम्बर सन्त आढृतिया हैं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा के भाव को बतलाने में और कहने में आढृतिया हैं। आढृतिया को हिन्दी में क्या कहते हैं? आहाहा! (दलाल कहते हैं)।

दृष्टान्त तो कैसा दिया है, देखो न! आहाहा! लोहचुम्बक के संसर्ग से सुई में अपनी पर्याय में लोहचुम्बक की ओर गति होने की शक्ति उत्पन्न हुई। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा आनन्दकन्द प्रभु, ज्ञातादृष्टा सहजानन्दमूर्ति प्रभु में जो पुण्य-पाप के विकार उत्पन्न होते हैं, उनका परिचय करता है कि ये मेरे हैं... ये मेरे हैं... ये मेरे हैं। आहाहा! उनके परिचय में आता है, उनके संसर्ग में (आता है), उनकी संगति करता है। आहाहा! राग और पुण्यपरिणाम की संगति करता है, पुण्यपरिणाम के कर्ता होने की शक्ति अज्ञान में उत्पन्न हुई। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई! यह अज्ञानी की बात की।

और जैसे लोहचुम्बकपाषाण के असंसर्ग से.. सुई ने लोहचुम्बक का संसर्ग ही नहीं किया, नजदीक ही नहीं गयी। आहाहा! सुई लोहचुम्बक के पत्थर के पास गयी ही नहीं, संसर्ग किया ही नहीं। आहाहा! है? असंसर्ग से (सुई में) उत्पन्न हुआ भाव लोहे की सुई को (गति न करनेरूप) स्वभाव में ही स्थापित करता है.. सुई अपने स्वभाव में रहती है। सुई ने लोहचुम्बक का संसर्ग नहीं किया तो गति करके लोहचुम्बक के पास नहीं जाती, अपने स्वभाव में रहती है। आहाहा! यह दृष्टान्त (दिया)।

उसी प्रकार राग-द्वेष-मोह.. भगवान आत्मा तो ज्ञातादृष्टा है। उसमें तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता, अन्दर ईश्वरता (भरी है), ऐसी अनन्त शक्तियों का सागर प्रभु-आत्मा तो है। यहाँ तो आत्मा को प्रभु कहते हैं। आहाहा! वह आत्मा अपनी ओर का संसर्ग छोड़कर राग का संसर्ग करता है तो उसे राग का कर्ताभाव होता है। परन्तु अपने स्वभाव के परिचयवाला धर्मी... आहाहा! राग-द्वेष-मोह के साथ मिश्रित नहीं होने से.. राग मेरा है और मुझे लाभदायक है, ऐसी दृष्टि धर्मी को नहीं है। आहाहा!

राग-द्वेष-मोह के साथ मिश्रित नहीं होने से.. देखा? मैं राग हूँ और मैं द्वेष हूँ, ऐसे मिश्रित नहीं होने से ज्ञानी को (आत्मा में) उत्पन्न हुआ ज्ञानमय भाव.. आहाहा! धर्मी जीव तो ऐसा जानता है कि मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ। मैं राग के परिचय में आया ही नहीं। राग पर चीज़ है, उसका परिचय क्या? आहाहा! मेरी चीज़ के परिचय में आनेवाला ज्ञानी राग का परिचय करता नहीं। आहाहा! है?

उसी प्रकार राग-द्वेष-मोह के साथ मिश्रित नहीं होने से (आत्मा में) उत्पन्न हुआ ज्ञानमय भाव.. यह रागादि होते हैं, परन्तु उनकी ओर का लक्ष्य नहीं, उनका परिचय नहीं, उन्हें अपना मानना, ऐसा संसर्ग नहीं। आहाहा! ऐसे ज्ञानी अर्थात् धर्मी चौथे गुणस्थान में समकृति (प्रवर्तता है)। श्रावक तो पंचम गुणस्थान, वह तो और आगे की दशा है। वह तो अलौकिक बातें हैं! अब सब मान बैठे हैं कि हम श्रावक हैं। मानकर बैठे, वस्तु नहीं, बापू! वस्तु अलग है। आहाहा!

राग, द्वेष और मिथ्यात्व के साथ मिश्रित न होने से, अपनापना नहीं मानता होने से...

आहाहा! राग और लोभ की इच्छा आदि हुई, उसमें अपनापना नहीं मानने से उत्पन्न हुआ ज्ञानमय भाव.. यह तो ज्ञानमय (भाव है) । मैं तो ज्ञातादृष्टा हूँ। सम्यक्त्वी ऐसा जानता है कि मैं तो ज्ञानमय भाव हूँ। यह रागमय भाव मैं नहीं हूँ। आहाहा! गजब (काम) ! कमजोरी से, चारित्रमोह के उदय से राग आता है, परन्तु उसका संसर्ग नहीं, स्वामीपना नहीं, उस पर दृष्टि नहीं। उस पर दृष्टि नहीं होने से आत्मा में राग का कर्तापना उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ? बहुत सरस बात कही !

सुई लोहचुम्बक का संसर्ग करे तो सुई में गति करने की पर्याय उत्पन्न होती है। इसी प्रकार अज्ञानी राग और पुण्यपरिणाम का संसर्ग करे तो पुण्यपरिणाम का कर्ता अज्ञानभाव से उत्पन्न होता है। आहाहा! और सुई लोहचुम्बक के संसर्ग में नहीं आती और अपने भिन्न स्वभाव में रहती है। इसी प्रकार धर्मी जीव उसे कहते हैं, ज्ञानी—धर्मी चौथे गुणस्थान में (उसे कहते हैं) कि राग और द्वेष के परिणाम होते हैं, उन पर दृष्टि नहीं है, उनका संसर्ग नहीं है, उनका परिचय नहीं है, भगवान का संसर्ग है, अपने स्वभाव का परिचय है, तो अपने स्वभाव में ज्ञानमय रहता है। आहाहा! ऐसी बात है। दिगम्बर सन्तों की बातें बहुत सूक्ष्म हैं। ऐसी बात कहीं अन्यत्र (है नहीं)। श्वेताम्बर और स्थानकवासी में ऐसी बात कहीं नहीं है।

मुमुक्षु : यह दुकान ही दूसरे प्रकार की है। यह माल कहीं नहीं मिलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : आह! दिगम्बर सन्त तो केवलज्ञानी के पथानुगामी हैं। केवलज्ञानी का पेट (हृदय) खोलकर रखा है। हृदय खोलकर (कहते हैं कि) यह मार्ग है, भाई! दुनिया माने, न माने (वह जाने)। समाज की तुलना रहे या न रहे, इसकी सन्तों को दरकार नहीं है। नागा बादशाह से आघा। नग्न मुनि अन्तर में आनन्दकन्द में झूलनेवाले, राग आता है उसके भी जाननेवाले हैं, उसके कर्ता नहीं हैं। मुनि को महाव्रत के परिणाम भी आते हैं, परन्तु मुनि उसे कहते हैं कि उनके कर्ता नहीं और अपने ज्ञातादृष्टा आनन्द में रहते हैं। आहाहा! उन्हें राग का संसर्ग नहीं है, इस कारण राग के कर्ता नहीं होते। आहाहा!

लोहचुम्बक का दृष्टान्त अमृतचन्द्राचार्यदेव ने दिया है। धर्मी को तो ज्ञानमय भाव है। आहाहा! मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ। राग का भाव हुआ, उस पर दृष्टि नहीं, तो

उसका परिचय नहीं, तो उसका संसर्ग नहीं, तो उसका कार्य करने का—वह कार्य मेरा, यह करने का भाव नहीं हुआ। आहाहा! राग का संसर्ग नहीं तो अपने ज्ञातास्वभाव में ज्ञानमय होने से, राग का कार्य मेरा नहीं परन्तु मैं राग का जाननेवाला हूँ – ऐसा भाव उत्पन्न होता है। आहाहा! है? थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! भाव तो जो हो, वह आता है। हिन्दी में भी भाव तो होवे वह आवे न! आहाहा!

भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। वह इन्द्रिय के संसर्ग के कारण जो रागादि उत्पन्न होते हैं, उस राग का कर्ता अज्ञानी होता है। आहाहा! उस अनीन्द्रिय का परिचय नहीं और इन्द्रिय का परिचय और इन्द्रिय के विषयों का परिचय और इन्द्रिय के विषयों में प्रेम-राग (करके) राग का परिचय (करता है)। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम राग हैं। राग का परिचय ज्ञानी को नहीं है। होता है तो उसका परिचय नहीं कि यह मेरा है और यह मेरा कर्तव्य है, यह भी नहीं। इस कारण ज्ञानी को राग का अकर्तापना होता है और ज्ञानमय, ज्ञानमय ज्ञान के कर्ता होते हैं। गजब आया! आहाहा!

ऐसी बात कहाँ है! आहाहा! वीतराग का हृदय है। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव विराजते हैं, वहाँ से तो यह बात आयी है। प्रभु विराजते हैं। प्रभु का पाँच सौ धनुष का देह है। प्रभु का करोड़ पूर्व का आयुष्य है। सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, हों! आहाहा! वहाँ पहले संवत् ४९ में कुन्दकुन्दाचार्यदेव गये थे, वहाँ से आकर यह बनाया है और टीकाकार भी ऐसे निकले... आहाहा! कि कुन्दकुन्दाचार्यदेव को जो भाव कहना है, वही भाव अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं।

प्रभु! तू राग का कर्ता किस प्रकार हुआ? तू तो ज्ञानस्वरूप है न प्रभु! यह दया, दान, राग का कर्ता क्यों हुआ? कि तेरे ज्ञान का संसर्ग अर्थात् परिचय, अनुभव छोड़कर उस राग का परिचय और राग के कर्तापने की बुद्धि तुझे हुई और तेरी दृष्टि राग पर रही, इस कारण राग का कर्तापना तुझमें उत्पन्न हुआ। आहाहा! जो शुभ-अशुभराग हुए, उन पर तेरी दृष्टि रही। संसर्ग का अर्थ यह है। इस कारण तुझमें उन पुण्य-पाप के भाव के कर्ता का अज्ञानमय भाव उत्पन्न हुआ। आहाहा! कहो, चेतनजी! यह कहाँ तुम्हारे श्वेताम्बर कहीं था? यह दृष्टान्त तो देखो! आहाहा!

भगवान् चैतन्यमूर्ति प्रभु ज्ञान, श्रद्धा और आनन्द के स्वभाव से भरपूर प्रभु का जिसने परिचय नहीं किया। श्रुत, परिचित वहाँ से आया, लो! ऐई! भाई! श्रुत परिचित आया न? आहाहा! उस राग का जिसने परिचय किया, चाहे तो शुभराग हो, तो उसके परिचय से तुझमें वह राग मेरा कर्तव्य है, ऐसी कर्ताबुद्धि और कर्मबुद्धि तुझमें उत्पन्न हुई। आहाहा! परन्तु वह राग, पुण्य-पाप वह मेरी चीज ही नहीं। मैं तो ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्य हूँ। जिसकी दृष्टि में ज्ञातापने के स्वभाव पर दृष्टि है, उसका राग के साथ परिचय नहीं है। परिचय नहीं तो कर्तापना नहीं और कर्तापना नहीं तो वह उसका कार्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। दुनिया से अलग प्रकार लगे। व्यवहार का लोप करते हैं और एकान्त है, ऐसा कहे। कहो, प्रभु कहो! यह तो प्रभु के घर की बात है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते हैं, वह बात आचार्य दृष्टान्त देकर सिद्ध करते हैं। आहाहा! लोगों को ख्याल आवे कि अकेली सुई लोहचुम्बक के पास न जाए तो संसर्ग बिना खिंचने की ताकत उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! इसी प्रकार भगवान् आत्मा पुण्य-पाप के परिणाम के परिचय में न जाए... आहाहा! और अपने ज्ञातादृष्टा के परिचय में आवे तो राग के कर्तापने की बुद्धि, अज्ञानपना ज्ञानी को नहीं होता। आहाहा! ऐसा है। थोड़ी बात में भी बात बहुत बड़ी, भाई!

कुन्दकुन्दाचार्यदेव, उसमें आया है न! 'मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।' तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्यदेव आये! आये हैं न? 'मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो' गौतम के पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्यदेव आये। अलौकिक कुन्दकुन्दाचार्यदेव थे! भगवान् के पास गये थे। आहाहा! वहाँ यह धर्म वर्तता है। यह धर्म कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यहाँ कहा। आहाहा!

(उत्पन्न हुआ) ज्ञानमय भाव जिसे कर्म करने की उत्सुकता नहीं है.. क्या कहा? पुण्य और पाप के भाव होने पर भी उन पर दृष्टि नहीं होने से, उनका परिचय अर्थात् मेरे हैं, ऐसा नहीं करने से अपने ज्ञानमय भाव में रहने से उनकी कर्ताबुद्धि का भाव नहीं होता। ज्ञातापने के भाव में रहते हैं। धर्मी जीव तो ज्ञातादृष्टापना, जानने-देखने में रहता है। आहाहा! ऐसी बात!

अज्ञानमय भाव ही कर्तृत्व में प्रेरित करता है.. आहाहा! इसलिए रागादि के साथ मिश्रित (मिला हुआ) अज्ञानमय भाव.. मिश्रित का अर्थ यह। राग मेरा है, राग से लाभ होगा, ऐसा अज्ञानमय भाव ही कर्तृत्व में प्रेरित करता है। राग मेरा कार्य है, यह अज्ञानमय भाव से प्रेरित होकर होता है। आहाहा! और जिसकी दृष्टि में, पुण्य परिणाम पर दृष्टि पड़ी है तो उसे अज्ञानमय भाव से यह कर्म मेरा है, ऐसी प्रेरणा होती है। ज्ञानी को भी पुण्य-पाप परिणाम होते हैं परन्तु उसके प्रति दृष्टि नहीं है, उसके प्रति परिचय नहीं है, उसका संसर्ग नहीं है। जैसे भिन्न चीज़ है, वैसे अपने में ज्ञान में रहकर जो पुण्य-पाप का कार्य मेरा है ऐसी बुद्धि नहीं होती। आहाहा! तब होता क्या है ?

और रागादि के साथ अमिश्रित भाव स्वभाव का प्रकाशक (प्रगट करनेवाला) होने से.. देखो, राग के साथ अमिश्रित (अर्थात्) राग मेरा है, ऐसा मिश्रितपना छूट गया। मैं तो ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु हूँ। ऐसे राग से अमिश्रित-राग से मिश्रित नहीं, मिला हुआ नहीं। आहाहा! गजब गाथा! राग—पुण्य, दया, दान, व्रत, काम, क्रोधादि भावों के साथ ज्ञानी को अमिश्रित भाव है। मैं भिन्न हूँ। उन सहित मैं हूँ, ऐसा है नहीं। आहाहा!

भाव स्वभाव का प्रकाशक होने से.. (वह) तो स्वभाव का प्रकाशक है। धर्मी को जानना-देखना भाव प्रगट हुआ तो वह राग का कर्ता नहीं होता। आहा! राग मेरा कार्य, ऐसा नहीं होता। प्रकाशक होने से मात्र ज्ञायक ही है,.. आहाहा! वह समकित्ती धर्मी पहली श्रेणीवाला मात्र ज्ञायक ही है। अपना और पर का जाननेवाला ही रहता है। पर का परिचय करके पर का कार्य मेरा, यह ज्ञानी नहीं मानता। किञ्चित्मात्र भी बन्धक नहीं है। मिथ्यात्व सम्बन्धी। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी समकित्ती को जरा भी बन्धन नहीं है। अबन्ध है। अस्थिरता जो चारित्रदोष की है, उसकी यहाँ गिनती नहीं है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी जो बन्ध था, वह बन्ध उसे नहीं होता।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)